जनजातीय समाज

साहित्य और संस्कृति

डॉ. हेमन्त पाल घृतलहरे

जनजातीय समाज

साहित्य और संस्कृति

सं. डॉ. हेमन्त पाल घृतलहरे

जे.टी.एस. पब्लिकेशन्स
वी-508, गली नं.17, विजय पार्क,
दिल्ली-110053
मो. 08527460252, 09990236819
ईमेल: jtspublications@gmail.com

जे.टी.एस. पब्लिकेशन्स, दिल्ली

वैधानिक चेतावनी

पुस्तक के किसी भी अंश के प्रकाशन- फोटोकॉपी, इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में उपयोग के लिए लेखक/ संपादक/ प्रकाशक की लिखित अनुमति आवश्यक है। पुस्तक में प्रकाशित शोध-पत्रों में निहित विचार तथा संदर्भों का संपूर्ण दायित्व स्वयं लेखकों का है। संपादक/ प्रकाशक इसके लिए उत्तरदायी नहीं है।

जनजातीय समाज साहित्य और संस्कृति

सं. डॉ. हेमन्त पाल घृतलहरे

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण : २०२१
ISBN 978-81-947770-6-9

मूल्य : ७६५.०० रूपये

प्रकाशक
जे०टी०एस० पब्लिकेशन्स
वी-५०८, गली नं०१७, विजय पार्क, दिल्ली-११००५३
दूरभाष : ०८५२७ ४६०२५२, ०११-२२६११२२३
E-Mail : jtspublications@gmail.com

आवरण : प्रतिभा शर्मा, दिल्ली
मुद्रक : तरूण ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

Janajaateey Samaj Sahitya Aur Sanskriti by
Dr. Hemant Pal Ghritlahare

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय : डॉ. हेमन्त पाल घृतलहरे V

१. सांस्कृतिक मोर्चे पर लड़ता आदिवासी समाज ११
डॉ. अनुज लुगुन

२. समकालीन आदिवासी कविता की पृष्ठभूमि १८
डॉ. कर्मानंद आर्य

३. आदिवासी कविताओं में वेदना और संवेदना ४५
डॉ. हेमन्त पाल घृतलहरे

४. आदिवासी भाषा संस्कृति दशा और दिशा ६३
डॉ. कुसुम माधुरी टोप्पो

५. जनजातीय समाज की अवधारणा एवं सांस्कृतिक विरासत ७६
ज्ञानलता केरकेट्टा

६. जनजातिय समाज और अस्मिता ८४
देवानंद बोरकर

७. छत्तीसगढ़ राज्य की धनवार जनजाति ८७
डॉ. विनोद गर्ग

८. छत्तीसगढ़ के प्रमुख जनजातीयो में गोंड़ जनजाति समुदाय का परिचय ९१
पंकज कुमार

९. सबारिया जनजातियों का सामाजिक-आर्थिक उत्थान ९६
डॉ. श्रीमती वृंदा सेनगुप्ता

१०. जनजातीय समाज में सहरिया जनजाति के विकास में समस्याएँ १०२
डॉ. योगेश्वर प्रसाद बघेल

११. जनजातीय समाज में महिलाओं की स्थिति १०६
चरणदास बर्मन

१२. पद्मश्री राजमाता राजमोहनी देवी १२९
डॉ. ममता गर्ग

१३. जनजातीय एवं आदिवासी संस्कृति और उनके समक्ष वर्तमान चुनौतियॉं १३४
डॉ० धर्मेन्द्र कुमार

१४. जनजाति समाज की सांस्कृतिक विरासत १४१
डॉ. आरती बोरकर

१५. आदिवासी साहित्य में निहित विस्थापनपरक् कविताएं : एक अध्ययन १४६
लवन सिंह कंवर, डॉ किरानी तिग्गा

१६. भारत के जनजातियों का लोक साहित्य १६१
डॉ. आर.पी.टण्डन
१७. आधुनिक जीवन में कुँड़ुख भाषा-संस्कृति की दशा एवं दिशा १६८
बाल किशोर राम भगत
१८. जनजातीय समाज की लोक सांस्कृतिक चेतना १८०
डॉ० अजय कुमार
१९. जनजातीय विकास चुनौती और संभावनाएं १८९
डॉ. बबलू सिंह
२०. भारतीय संविधान और जनजाति समाज :
एक विश्लेषणात्मक अध्ययन २११
डॉ. प्यारेलाल आदिले
२१. जनजातीय समाज और पर्यावरण २३७
ममता देवी
२२. प्रकृति युद्धरत है : प्रेम और संघर्ष के बीच स्त्री २४६
डॉ. कर्मानंद आर्य
२३. जनजातीय समाज और स्वास्थ्य समस्याएँ २६३
डॉ. रीता यादव
२४. जनजाति समाज में महिलाओं की स्थिति २६७
श्रीमती नर्मता पाण्डेय

आदिवासी कविताओं में वेदना और संवेदना

डॉ. हेमन्त पाल घृतलहरे
सहायक प्राध्यापक हिन्दी (प्रवर श्रेणी)
शासकीय महाविद्यालय सनावल
जिला–बलरामपुर (छ.ग.)

प्रस्तावना – आज के विमर्शवादी युग में स्त्री और दलित विमर्श के बाद सर्वाधिक प्राकृतिक, प्रासंगिक, जरूरी और प्रभावशाली विमर्श के रूप में जो हमारे सामने आता है, वह आदिवासी विमर्श है। आदिवासी धरती के प्राचीनतम् (आदि) निवासी या मूल निवासी माने जाते हैं। ये प्रकृति के बीच रहकर सहज प्राकृतिक जीवन जीते हैं। जल, जंगल, जमीन को बचाकर रखने में इनकी अहम भूमिका है। वर्तमान आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता और बाजारवादी उपभोक्तावादी संस्कृति से अलग ये अपने वास्तविक 'आइडेन्टिटी' के साथ आदिवासी संस्कृति और सहजीविता को जीवित रखे हुए हैं। इनकी सरलता सहजता का गलत फायदा चालाक लोगों ने हमेशा उठाया है जिसे कल तक वे समझ नहीं पाते थे या फिर व्यवस्था ने इन्हें मूक बना दिया था जिस कारण इनका आक्रोश व्यक्त नहीं हो पाता था। आज इनके मस्तिष्क में तर्क है, हाथों में कागज और कलम हैं, भारत का संविधान भी इनके हितों की रक्षा करता है और इस प्रकार अपने ऊपर होने वाले अन्याय अत्याचार का प्रतिकार करते हुए आदिवासी लिख रहे हैं आदिवासी साहित्य। यह साहित्य गरीब की झोपड़ी का वह लालटेन है जिसका अंजोर और उजास कई पीढ़ियों के जीवन को आलोकित कर रहा है और झोपड़ी के साथ ही जल, जंगल, जमीन की रखवाली भी। इसे इसकी पूरी सर्जनात्मकता के साथ पढ़ा जाना जरूरी है।

बीजशब्द – आदिवासी, जल, जंगल, बाघ, गणतंत्र, माटी, नदी, पहाड़, संस्कृति, माँदल, साजिश, हँड़िया, मुंडेर, बस्ती, मुण्डा, हक, देवता, सूदखोर, इतिहास, जाति, मुक्ति, घर।

आदिवासी और उनकी कविता – आदिवासी के लिए भारत में संवैधानिक रूप से जनजाति शब्द प्रयोग किया जाता है। ऐसी धारणा है कि आमतौर पर जंगलों, पहाड़ों और दुर्गम वन्य प्रांतरों में वन्य उत्पादों के सहारे अपना जीवन बसर करने वाले और आधुनिक शहर–नगर की चकाचौंध से दूर, विकास की मुख्यधारा से अलग–थलग धरती के मूल निवासियों का समूह आदिवासी कहलाते हैं जो अत्यंत कम आवश्यकताओं के साथ सहजीवन की अवधारणा के साथ जीते हैं। साधन–सुविधा की दृष्टि से ये अत्यंत पिछड़े हुए हैं। इनके भोलेपन का फायदा उठाकर तथाकथित सभ्य और बड़े लोग इनकों 'अमीर धरती के गरीब' बनाने में लगे हैं। इनके संसाधन अब इनके हाथों से फिसल चुके हैं इनकी मालकियत के दावे कोई और कर रहा है।

इधर कुछ दशकों से आदिवासी जीवन पर चिंतन जोरों पर है जिसे आदिवासी विमर्श नाम दिया गया है। पहले तो गैर आदिवासियों ने इस पर रूचि दिखाई नाम–यश–धन अर्जित किए पर अब कलम खुद आदिवासी के हाथ है। आदिवासियों के द्वारा लिखा जा रहा आदिवासी साहित्य यथार्थ, अनुभूति, पीड़ा, प्रतिकार, आक्रोश, संवेदना और प्रतिरोध से भरा है। आदिवासी साहित्य में जागरूकता है, समझ है, विडम्बना का चित्रण, शोषण का पर्दाफाश है लेकिन प्रतिशोध की भावना नहीं है। श्रम, सृजन, सहजीवन उनके जीवन–कर्म और साहित्य–धर्म दोनों जगह परिलक्षित होता है।

आदिवासी प्रायः छल–कपट से दूर, सरल, सहज, भोले–भाले होते हैं। इनमें आपस में अपनेपन और भाईचारे की

भावना होती है। इनमें देशप्रेम, जातिप्रेम और संस्कृति प्रेम अत्यधिक पाया जाता है।[1] इतिहास गवाह है कि अपनी संस्कृति और स्वतंत्रता के लिए आदिवासी सदैव संघर्ष करते आया है। बिरसा मुण्डा, तिलका मांझी, वीर नारायण सिंह जैसे नाम इसके साक्षी हैं।

आदिवासी समाज में भी कई जातियाँ हैं और अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग जनजाति समुदाय निवास करती हैं, पर इनकी जीवन शैली, सभ्यता, संस्कृति, परंपराएँ लगभग समान हैं। केन्द्र व राज्य सरकारें आदिवासी समाज को संरक्षण, आरक्षण व विकास के विशेष अवसर प्रदान कर रहीं हैं, फिर भी आदिवासी समाज का बड़ा हिस्सा अभी समता, स्वतंत्रता, न्याय और बंधुत्व की पहुँच से काफी दूर है।

आदिवासी समाज का बड़ा हिस्सा प्रायः जंगलों में निवास करता है। इनके पास रोटी, कपड़ा, मकान की न्यूनतम सुविधाएँ हैं चिकित्सा, शिक्षा, परिवहन और रोजगार का पहिया इनके पर्वत, जंगल–झाड़ियों, नदी–नालों से डरकर शहरों की ओर प्रायः लौट जाया करते हैं। अभावों के बीच लोकगीत–नृत्य–संस्कृति से जीवन में रस घोलते ये अपनी दुनिया में आनंदित रहते हैं। जंगल ही इनका घर, परिवार और जीवन है। जंगल से जल, जमीन और जीवनोपयोगी वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। पर इन पर भी दुश्मनों की नजर पड़ गई है, नदियाँ, पहाड़ जमीने सबकुछ तथाकथित सभ्य समाज के चालाक लोगों द्वारा निगल लिए जा रहे हैं। इस पीड़ा को लेकर आज आदिवासी समाज जागरूक हो रहा है और आदिवासी कलमकार इन समस्याओं को बड़ी शिद्दत और जिम्मेदारी से उठा रहे हैं। जंगल की नदी को बचाने की आवाज रामदयाल मुण्डा की कविता में कुछ इस तरह गूंजी है –

उसे बाँधकर ले जा रहे थे

राजा के सेनानी

और नदी

छाती पीटकर रो रही थी

लौटा दो, लौटा दो

मुझे मेरा पानी।

–(पद्मश्री रामदयाल मुण्डा की कविता 'विरोध')

आदिवासी को जंगल अपना घर लगता है पर उसकी जमीने उससे छीन ली जा रही हैं जिसकी पीड़ा इन पंक्तियों में दिखाई देती हैं –

"पेट भर रोटी के नाम पर

छीन ली गयी हमसे

हमारे पुरखों की जमीन

क्हा जमीन बंजर है।" (2)

आदिवासी के भोलेपन का फायदा उठाकर लोग शोषण कर रहे हैं।

बड़ी ही चालाकी से नदी और पहाड़ सभ्यता के बहाने अतिक्रमित कर ली जाती है इस पीड़ा की ओर ध्यानाकर्षण करते हुए कवि लिखता है –

''स्वर्णरेखा की छाती पर उग आयी हैं

अनजानी शहरी सभ्यताएँ

जो निगल जाना चाहती हैं उसका सर्वस्व

X X X

स्वर्णरेखा छटपटा रही है

अपने किनारों की तलाश में

उसका अस्तित्व उसका वजूद गुम हो रहा है''...(3)

बहुत से लोग आदिवासी के जल, जंगल, जमीन को बचाने की मुहिम में जुड़ जाते हैं तथा दौलत और शोहरत प्राप्त कर लेते हैं, लेकिन आदिवासी जीवन में कोई उसका सकारात्मक प्रभाव दिखाई नहीं देता। आदिवासी जीवन लिखने, बोलने वाले लोग विशेषज्ञ बन जाते हैं पर इसका कितना लाभ आदिवासी को मिल पाता है, यह पीड़ा महादेव टोप्पो की कविता 'प्रश्नों के तहखानो में' की इन पंक्तियों से सहज अनुभव की जा सकती हैं –

''असंतुलित, विनाशकारी इस विकास

के विरोध में

निकाले जाते हैं जुलूस

जुलूसों में खड़े देखते हैं बगल में अपने

कभी मेधा, रमणिका, अरूंधति तो कभी ब्रम्हदेव

हमारे ही गाँव–घरों में बचाने की खातिर–धरती
का नंगापन

चलते हैं पेड़ बचाने के आंदोलन

धरती बनती रहती है फिर भी बंजर

इसी बीच, लेकिन

कोई हमारी टंगिया, कुमनी, हल, कुदाल, तीर,
धनुष

धुमकुरिया, घोटुल का अध्ययन करता

हमारे कंधे की सवारी करता बन जाता है
अंतरराष्ट्रीय विद्वान''

–('लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ' से अद्धृत)

आज आदिवासी न केवल जागरूक हो रहा है, बल्कि बड़ी तेजी से वह समुदाय को जागरूक करने में भी लगा है। ग्रेस कुजूर की कविता 'प्रतीक्षा' कुछ ऐसी ही जागरूकता का आह्वान या क्रांति की अपील लगती है जो मूक आदिवासी को झकझोर देती है –

''चुप क्यों हो संगी?

कुछ तो कहो!

पैरों के नीचे धरती के अन्दर

कोयले के अन्तस में छुपी

आग के बावजूद

इतनी ठण्डी क्यों है तुम्हारी देह?

आदिवासियों की अपनी विशिष्ट बोली–भाषा भी है जो उसे एक विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान देती है, लेकिन आदिवासी अस्मिता को मिटाने की साजिश है जो उसकी मातृभाषा को भी मिटा देने को आतुर है। आज की पीढ़ी इस षडयंत्र को बखूबी समझती है। 'मातृभाषा की मौत' नामक कविता में जसिंता केरकेट्टा लिखती हैं –

"माँ के मुँह में ही
मातृभाषा को कैद कर दिया गया
और बच्चे
उसकी रिहाई की माँग करते करते
बड़े हो गए
मातृभाषा खुद नहीं मरी थी
उसे मारा गया था
पर, माँ यह कभी न जान सकी"

लोक भाषाओं के संरक्षण व संवर्धन की ललक जगाती है, ये कविता। इसी तरह आज के प्रतिष्ठित आदिवासी युवा कवि अनुज लुगुन जंगल के महत्व को नई पीढ़ी में स्थापित करना चाहते हैं क्योंकि जंगल केवल जंगल नहीं एक दर्शन है –

"हम जंगल के पूर्वज रहे हैं
और जंगल हमारा पूर्वज है
जंगल केवल जंगल नहीं है
नहीं है वह केवल दृश्य
वह तो एक दर्शन है
पक्षधर है वह सहजीविता का
दुनिया भर की सत्ताओं का प्रतिपक्ष है वह।" (4)

यह जंगल सहजीविता की पाठशाला कही जा सकती है। जंगल है तो आदिवासी हैं, आदिवासी हैं तो जंगल हैं, दोनों एक–दूसरे के संरक्षक हैं। जंगल का बाघ उनका शत्रु नहीं साथी है। लेकिन आदिवासी समाज में ही कुछ ऐसे लोग पैदा हो रहे हैं जो आदिवासियों को नुकसान पहुँचा रहे हैं, ऐसे समाज विरोधी लोगों की पहचान भी आज का आदिवासी कवि कर रहा है –

"उस दिन जब
सुगना मुण्डा की बेटी ने
उनकी वासनामयी
दैहिक माँग को खारिज कर दिया
तो वे 'चानर–बानर' बन कर
उसके समाज के अन्दर ही घुस आये" (5)

कवि ऐसे हिंसक पशुओं से सावधान रहने की चेतावनी भी दे रहा है और इन्हें चौपाये पशु से ज्यादा घातक बता रहा है –

"ओ बिरसी!
यह वह चौपाया बाघ नहीं
जिसका शिकार बहिंगा से
तुम्हारी दई ने बकरी चराते समय किया था
जब उसने जानलेवा हमला बोला था" (6)

आज के कवि की कविता आदिवासी अस्मिता को बचाने के लिए संघर्ष की प्रेरणा देती है। आज आदिवासी समझ चुका है कि उसके विरूद्ध बड़ा षड़यंत्र है और षडयंत्रकारियों की लम्बी फौज है, मगर आदिवासी भयभीत होने के बजाय संघर्षभूमि पर अडोल खड़ा है। यह आदिवासी विमर्श की उल्लेखनीय उपलब्धि कही जा सकती है कि यहाँ निर्भय होकर आदिवासी अपने शत्रुओं को ललकार रहा है –

"ओ आदमखोर!
तुम्हारी सुरक्षा में साँप, बिच्छू,
और घड़ियालों की फौज है
तुम्हारी वासनामयी आँखें दहक रही हैं
तुम्हारी जीभ लार टपका रही है
अपनी पैनी दाँत और पंजों के साथ
तुम हमारी ओर बढ़ रहे हो
लेकिन देखों!
हम तुम्हारे सामने निर्भय खड़े हैं" (7)

ऐसी कविताएँ साहित्य और समाज दोनों को ताकत देती हैं।

आदिवासी स्त्री को आज तक सभ्य समाज का बड़ा हिस्सा उसकी गरिमा में देख नहीं पाया। आदिवासी स्त्री या लड़की उसे एक सहज उपलब्ध माँस का टुकड़ा दिखाई देती है। इस पर सख्त ऐतराज करते हुए 'आदिवासी लड़की' नामक कविता में हरिराम मीणा लिखते हैं –

"उतरो कवि
लड़की की पुष्ट जंघाओं के नीचे
देखो पैरों के तलुओं को
बिवाइयों भरी खाल पर
छाले फफोलों से रिसते स्राव को देखो
कैसा काव्य–बिम्ब बनता है कवि

X X X

बंद कमरे की कृत्रिम रोशनी से परे
बाहर फैली कड़ी धूप में बैठकर
फिर से लिखना
उस आदिवासी लड़की पर कविता।"
–('लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ' से उद्धृत)

आज के साहित्यकार आदिवासी स्त्री, पुरूष, कला, संस्कृति की उस इमेज को बदलना चाहते हैं जो बाहर से उन पर थोप दी गई है। आदिवासी अपनी इमेज खुद गढ़ रहे हैं और खुद पर होने वाले अन्याय अत्याचार का विरोध भी कर रहे हैं। 'साहेब! कैसे करोगे खारिज' नामक कविता में जसिंता केरकेट्टा इन्हीं षडयंत्रों का पर्दाफाश कर रही हैं –

"साहेब!
एक दिन
जंगल की हर लड़की
लिखेगी कविता
क्या कहकर खारिज करोगे उन्हें?
क्या कहोगे साहेब?
यही न ...
कि यह कविता नहीं
"समाचार" है ...।।"

आदिवासी समाज अनेक समस्याओं से घिरा हुआ है जिसमें लड़की का गायब होना, बेच दिया जाना अथवा उसका शोषण किया जाना भी एक बड़ी समस्या है। गाँव से गायब हुई लड़की शहर में कब, कहाँ, कैसे और क्यूँ गुम हो जाती है यह चिंता और चिंतन का विषय है। मानव तस्करी का बड़ा घिनौना खेल जारी है जिस पर सवाल उठाती हुई निर्मला पुतुल लिखती हैं –

"मैं अपने इलाके की उन गुम हो गई लड़कियों को

ढूँढना चाहती हूँ/पहुँचना चाहती हूँ उन लोगों तक

समझना चाहती हूँ उनके जीवन और दिनचर्या का गणित

और देखना चाहती हूँ उसके भीतर

कितना बचा है हमारा झारखंड

कितनी बची है उसकी भाषा में संताल परगना के माटी की गंधा

और थोड़ी भी अपने गाँव घर वापस लौटने की गुंजाइश

बची है उनकी आँखों में या नहीं

देखना चाहती हूँ मैं" (8)

अपने बीच की गुम हुई लड़कियों के प्रति भय, पीड़ा और चिन्ता से भरा हुआ जागरूक वर्ग उन्हें ढूंढने की कोशिश कर रहा है। आज का कवि समाज को सचेत और सावधान भी कर रहा है। निर्मला पुतुल लिखती हैं –

"इससे बचो चुड़का सोरेन!

बचाओ इसमें डूबने से अपनी बस्तियों को

देखो तुम्हारे ही आँगन में बैठ

तुम्हारे हाथों बना हंड़िया तुम्हें पिला–पिलाकर

कोई कर रहा है तुम्हारी बहनों से ठिठोली

बीड़ी सुलगाने के बहाने बार–बार उठकर रसोई में जाते

उस आदमी की मंशा पहचानो चुड़का सोरेन

जो तुम्हारी औरत से गुपचुप बतियाते बात–बात में दाँतू निपोर रहा है"

–(नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द)

आदिवासी संस्कृति में माँस मदिरा का सेवन समाज स्वीकृत है, लेकिन इस मदिरापान के कारण ही उसका तन, मन, धन, जन, जल, जंगल, जमीन सब लुट जा रहा है, इसलिए इससे बचने की सलाह दी गई है।

आदिवासी समाज के पतन का मूल करण यह शराबखोरी ही है। निर्मला पुतुल लिखती हैं –

"कैसा बिकाउ है तुम्हारी बस्ती का प्रधान

जो सिर्फ एक बोतल विदेशी दारू में रख देता है

पूरे गाँव को गिरवी

और ले जाता है कोई लकड़ियों के गट्ठर की तरह

लादकर अपनी गाड़ियों में तुम्हारी बेटियों को"

–(नगाड़े की तहर बजते हैं शब्द)

भोली भाली आदिवासी लड़कियों को प्रेमजाल में फँसाकर उनका यौन शोषण किया जाता है यह चिंता भी आज उभरकर आती है। निर्मला पुतुल की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

"कहाँ गया वह परदेशी जो शादी का ढोंग रचाकर

तुम्हारे ही घर में तुम्हारी बहन के साथ

साल–दो–साल रहकर अचानक गायब हो गया?

ऐसे लोगों को पहचानने और उनके चंगुल में नहीं फँसने की हिदायत देते हुए तीखे तेवर में कवयित्री कहती हैं –

"ये वे लोग हैं जो

हमारे ही बिस्तर पर करते हैं

हमारी बस्ती का बलात्कार

और हमारी ही जमीन पर

खड़ा हो पूछते

हमसे हमारी औकात" (9)

आदिवासी कविता कल्पना की नहीं यथार्थ की बात करना चाहती है, वह सौन्दर्य की रोमांटिक कविता नहीं बल्कि वैचारिक कविता

है। यह कविता यथार्थ की धरातल से व्यवस्था के समक्ष मजबूती से खड़े हो सवाल खड़े करती है और यह प्रश्न ही उसका सौन्दर्यबोध है –

"मैं बात करना चाहती हूँ
अपने उस गाँव की, जहाँ आज तक बिजली नहीं पहुँची
सड़के नहीं पहुँची, और तो और जहाँ की महिलाएँ
आज भी कोस भर दूर झरनों से पानी ढोकर लाती हैं
और जिनके बच्चे बगाली के नाम पर
वर्षों से महाजन के पास गिरवी पड़े हैं" (10)

आदिवासी जंगल में महुआ बीनते, लकड़ी तोड़ते, तेंदूपत्ता संग्रहण करते, कुछ जरूरी फसलों की खेती करते जीवन व्यतीत करते हैं। भूमि अधिग्रहण के कारण पलायन उनकी एक बड़ी समस्या है। यदि वे सरकार के खिलाफ लामबंद होते हैं तो उन्हें नक्सली कहकर मार दिया जाता है। जसिंता केरकेट्टा की कविता 'पहाड़ और पहरेदार' की पंक्तियाँ बहुत कुछ संकेत करती हैं –

"स्त्रियों को मांस का लोंधा समझने को अभिशप्त
ये जंगल की स्त्रियों के मांस पर टूट पड़ते हैं
और भोर उठकर पेड़ से शलप उतारने जा रहे
उनके प्रेमियों को गोली मार देते हैं
ये शहर लौटकर गर्व से चिल्लाते हैं
देखो, जंगल से हम माओवादी मारकर आते हैं"

–('लोकप्रिय आदिवासी कविताएँ' से उदधृत)

आदिवासी दोनों तरफ से पिस जाते हैं नक्सली इन्हें पुलिस का मुखबिर समझकर मार देते हैं, पुलिस इन्हें नक्सली

बताकर। व्यवस्था की दोहरी मार झेलना इनका दुर्भाग्य है। पर आज का आदिवासी कवि हर साजिश के खिलाफ लामबंद होकर उठ खड़े होने की प्रेरणा दे रहा है –

उठो कि अपने अँधेरे के खिलाफ उठो

उठो अपने पीछे चल रही साजिश के खिलाफ

उठो, कि तुम जहाँ हो वहाँ से उठो

जैसे तूफान से बवण्डर उठता है

उठती है जैसी राख में दबी चिन्गारी

–('बिटिया मुर्मू के लिए'/निर्मला पुतुल)

आज की कविता सहन करते रहने की नहीं बल्कि प्रतिकार करने, प्रतिरोध करने की भावना विकसित करती है ताकि अन्याय और शोषण को रोका जा सके। आदिवासी संस्कृति में कुछ दलाल घुस आए हैं सावधान रहने की प्रेरणा भी दी जा रही है –

"वे दबे पाँव आते हैं तुम्हारी संस्कृति में

वे तुम्हारे नृत्य की बड़ाई करते हैं

वे तुम्हारी आँखों की प्रशंसा में कसीदे पढ़ते हैं

वे कौन हैं...?

सौदागर हैं वे... समझों ..."

–('बिटिया मुर्मू के लिए'/निर्मला पुतुल)

आज का आदिवासी कवि विभिन्न जाति समुदायों को एक करने की कोशिश कर रहा है, उसका मानना है कि सारे आदिवासी प्रजाति सहजीवी हैं, एक हैं –

"एक ही मूल के हैं ये

कोल, भील, मुण्डा, संथाल, गोंड़, खेरवार

बैगा, मुड़िया, कोड, कोया, पहाड़िया,

ऐसे ही और भी सभी

जिनका एक ही सहजीवी दर्शन रहा हैं" (11)

आदिवासी लेखन की 'आडियोलॉजी' इस बात को केन्द्र में लेकर चलती है कि विध्वंसकारी शक्तियाँ जीवन केन्द्र में स्थापित न हो जाएँ बल्कि सृजनात्मक और प्राकृतिक शक्तियों से सहज जीवन केन्द्र निर्मित होने चाहिए। निम्न पंक्तियाँ आदिवासी विमर्श का निचोड़ लगती हैं –

"एक तरफ हम हैं

जो जीवन को बचाने के लिए खुद को समर्पित कर रहे हैं

और दूसरी तरफ अमानवीयता की भी तैयारी है

गौर करने की बात है कि

हर शक्ति मानवीयता के नाम पर ही उभरती है

हमारी तैयारी शक्ति स्थापित करने की नहीं है

बल्कि अमानवीय शक्तियों को

जीवन के केन्द्र में आने से रोकने की है'' (12)

आज आदिवासी अपने खिलाफ हो रहे षडयंत्र को समझता है। उसे किस तरह प्रतिनिधित्व के अवसर से वंचित किया जा रहा है, वह भलीभाँति जानता है। वाहरू सोनवणे की कविता 'स्टेज' की पंक्तियाँ इसका सटीक उदाहरण हैं –

''और वे स्टेज पर खड़े होकर
हमारा दुख हमें ही बताते रहे
हमारा दुःख हमारा ही रहा
कभी उनका नहीं हो पाया'' (13)

निष्कर्ष – इस प्रकार आदिवासी कविता मुख्यधारा के साहित्य से हटकर अपनी एक अलग पहचान निर्मित करती है तथा आदिवासियों के जल, जंगल, जमीन, कला, संस्कृति, गरीबी, भुखमरी, ठगी, यौनशोषण आदि अनेक मुद्दों पर विचार करती है। इन कविताओं में यथार्थ है, आक्रोश है, पीड़ा है, प्रतिकार है, प्रतिरोध है, पश्चाताप है, सावधानी है, आह्वान है, मुक्ति का स्वर है। सामाजिक–आर्थिक–लैंगिक असमानता और बाजारवाद के खतरे इनमें हैं। समकालीन आदिवासी कविताओं में पलायन व विस्थापन का चित्रण तो है परंतु जीवन या संघर्ष से पलायन नहीं है बल्कि डटकर मुकाबला करने की प्रेरणा है। आदिवासी कविता अपनी अस्मिता की तलाश है। आदिवासी कविता मुक्ति की अभिलाषा है, वह विषमतामूलक सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था से, शोषण, अन्याय, पूर्वाग्रहों से मुक्त होने की छटपटाहट है। आदिवासी कविता नए बिम्ब, प्रतीकों, उपमानों, भावों, शैलियों में लिखी जा रही सुघड़, सार्थक जीवनाभिव्यक्ति है जो आदिवासी समाज को राह दिखाती लालटेन तो है ही, वह आदिवासी समाज व उसके इमेज को गढ़ती तराशती शिल्पकार भी है। जिस प्रकार के जागरूक कवि जिम्मेदारीपूर्वक सत्त लेखन में संलग्न हैं उससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि न केवल आदिवासी कविता बल्कि आदिवासी समाज का भविष्य भी उज्ज्वल है। वेदना और

संवेदना से परिपूर्ण ये कविताएँ साहित्य की अनमोल धरोहर है जिसे पूरी साहित्यिक गरिमा के साथ पढ़ा जाना और सहेजकर रखा जाना जरूरी होगा।

सन्दर्भ सूची

1 टाकभौरे, सुशीला. *हाशिए का विमर्श*, नेहा प्रकाशन दिल्ली, 2015 पृष्ठ 167

2 नीर, नीरज. *जंगल में पागल हाथी और ढोल*, रश्मि प्रकाशन लखनऊ, 2017 पृष्ठ 38

3 वही, पृष्ठ 116

4 लुगुन, अनुज. *बाघ और सुगना मुण्डा की बेटी*, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 2017 पृष्ठ 44

5 वही, पृष्ठ 34

6 वही, पृष्ठ 48

7 वही, पृष्ठ 106

8 पुतुल, निर्मला. *बेघर सपने*, आधार प्रकाशन पंचकूला, 2014 पृष्ठ 45

9 पुतुल, निर्मला. *नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द*, भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, पृष्ठ 54

10 पुतुल, निर्मला. *बेघर सपने*, आधार प्रकाशन पंचकूला, 2014 पृष्ठ 47

11 लुगुन, अनुज. *बाघ और सुगना मुण्डा की बेटी*, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 2017 पृष्ठ 80

12 वही, पृष्ठ 68

13 गुप्ता, रमणिका. *आदिवासी लेखन एक उभरती चेतना*, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 110

संपादक परिचय

डॉ. हेमन्त पाल घृतलहरे

जन्म- 20.05.1977, ग्राम धनगांव (पामगढ़)

जिला- जाँजगीर चाँपा (छत्तीसगढ़)

शिक्षा- बी.एस.सी. (बायो), एम.ए. (हिन्दी, अंग्रेजी)

नेट, स्लेट, पीएच.डी.

पद- सहायक प्राध्यापक हिन्दी (प्रवर श्रेणी)/ प्रभारी प्राचार्य
शासकीय महाविद्यालय सनावल, जिला बलरामपुर (छ.ग.)

अध्यापन अनुभव- 20 वर्ष (पी जी- 5 वर्ष, यू जी- 17 वर्ष, स्कूल 3 वर्ष)

विशेषज्ञता का क्षेत्र- संत साहित्य एवं विमर्श साहित्य

प्रकाशित किताबें- 1. साहित्य समाज और महिला सशक्तिकरण (संपादित),
2. मेरी कलम को ना आवाज दो (काव्य संग्रह)

अकादमिक कार्य- लगभग 100 राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों में सहभागिता (पेपर रीडिंग), दर्जन भर संगोष्ठी में विषय विशेषज्ञ के रूप में आमंत्रित व्याख्यान, रासेयो व अन्य शिविरो के माध्यम से छात्रों के व्यक्तिगत विकास व कैरियर निर्माण हेतु प्रतिबद्ध, लोकप्रिय शिक्षक एवं सामाजिक चिंतक। 'छत्तीसगढ़ी, लोकाक्षर', 'सतयुग संसार', 'सत्यालोक', 'सतनाम संदेश', 'सतनाम सार', आदि पत्रिकाओं में लेख व रचनाएँ प्रकाशित। महाविद्यालय प्राचार्य के रूप में 12 वर्षो का प्रशासनिक अनुभव 'समाजदर्शी शोध पत्रिका' (अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिक जर्नल) का सहसंपादक महाविद्यालयीन वार्षिक पत्रिकाओं का संपादन कार्य। अध्ययन अध्यापन, लेखन, गायन, वादन, भाषण, मोटिवेशन, ध्यान एवं एनर्जी हीलिंग में अभिरूचि। यू ट्यूब चैनल के माध्यम से शिक्षा व संस्कृति का प्रचार-प्रसार। दर्जन भर शोध पत्र प्रकाशित।

सदस्यता- गुरू घासीदास सतनाम फाउण्डेशन (चैरिटेबल ट्रस्ट) के संस्थापक व अध्यक्ष, राष्ट्रीय शिक्षक संचेतना के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष, नागरी लिपि परिषद, नई दिल्ली के छ.ग. राज्य संयोजक, विश्व हिन्दी साहित्य सेवा संस्थान (प्रयागराज) के आजीवन सदस्य, सतनाम संदेश पत्रिका के आजीवन सदस्य, प्रगतिशील छत्तीसगढ़ सतनामी समाज जिला बलरामपुर के जिलाध्यक्ष, कर्मफल शिक्षण समिति जोंरैला (पामगढ़) के आजीवन सदस्य

सम्मान / पुरस्कार

ज्योतिबा फूले राष्ट्रीय शिक्षक सम्मान- 2019, सतनाम अनमोल रत्न- 2018 (व अन्य सम्मान)

संस्थापक- गुरू घासीदास सतनाम फाउण्डेशन (नेशनल चैरिटेबल ट्रस्ट), कर्मफल शिक्षण समिति जोंरैला-पामगढ़, छत्तीसगढ़ ज्ञान ज्योति उच्चतर माध्यमिक विद्यालय पामगढ़, संत शिरोमणि गुरू घासीदास महाविद्यालय पामगढ़, सतनाम ध्यान केन्द्र पामगढ़।

₹ 795/-

जे.टी.एस. पब्लिकेशन्स
वी-508, गली नं.17, विजय पार्क,
दिल्ली-110053
मो. 08527460252, 9990236819
ईमेल: jtspublications@gmail.com

ISBN 978-81-947770-6-9
9 788194 777069